काव्य-रचना

[काव्य के अंग—शब्दशक्ति, रस, अलंकार, छंद आदि
का संक्षिप्त परिचय]

लेखक

प्रेमनारायण टंडन, एम० ए०

पहली बार] [मूल्य पाँच आना

काव्य-रचना

[काव्य के अंग—शब्दशक्ति, रस, अलंकार, छंद आदि
का संक्षिप्त परिचय]

लेखक

प्रेमनारायण टंडन, एम० ए०

—(:❀:)—

पहली बार

[मूल्य पाँच आना

निवेदन

सात-आठ वर्ष पूर्व 'हिंदी रचना और उसके अंग' नामक अपनी पुस्तक में छंद, रस और अलंकार के संबंध में भी दस-बारह सफे जोड़ दिये थे। इधर उस पुस्तक का चौथा संस्करण छपा है। इसके लिए रस-अलंकार वाला अंश कुछ बढ़ाकर लिखना आवश्यक जान पड़ा। इस छोटी सी पुस्तक में वही अंश इस आशा से दिया गया है कि साहित्य के प्रारंभिक विद्यार्थी इससे लाभ उठायँगे।

लेखक

सूची

काव्य के अंग

काव्य—जो सुंदर रचना हृदय को अलौकिक आनंद प्रदान करे, वही काव्य है। कवि के हृदय में जब इतने अधिक भाव उमड़ते हैं कि वे उसमें समाते नहीं, छलकने लगते हैं तब वह उन्हें शब्दों से बने पात्र में भर देता है। मानव-समाज इस रसमय भाव का रसास्वादन करता है, निजी विचारों की उसमें छाया देखता है और मंत्रमुग्ध-सा हो जाता है।

काव्य एक कला है। कला का मुख्य उद्देश्य है आनंद देना। सुंदर कविता से मन को अद्‌भुत आनंद मिलता है। इसलिए काव्य-कला सब कलाओं में श्रेष्ठ है। मनोरंजन के अतिरिक्त काव्य का एक उद्देश्य यह भी है कि वह मनुष्य की सद्वृत्तियों को जाग्रत और उत्तेजित करे। देशप्रेम की कविता पढ़ने-सुनने से हमारे हृदय में देश-प्रेम की भावना का उदय होता है। इसी से काव्य मानव-समाज के लिए उपयोगी भी है।

काव्य के विषय—मानव-जीवन और प्रकृति काव्य के दो प्रधान विषय हैं। मनुष्य के हृदय की भावना, उसका आदर्श उसकी आकांक्षा, आदि का वर्णन करना कवि का एक ओर उद्देश्य रहता है तो दूसरी ओर रम्य और प्रतिक्षण नूतन रूप धारण करने वाली प्रकृति के अद्‌भुत दृश्यों का। हृदय का भाव और प्रकृति का रूप पुस्तक के पृष्ट की तरह, खुला तो सभी के लिए रहता है, परन्तु उसका समझना, उसका संदेश सुनना, उसमें लीन हो जाना सबके वश की बात नहीं है। यह सौभाग्य केवल कवि को ही प्राप्त होता है।

अतएव कवि वही है जो मानव जीवन की प्रत्येक क्रिया और प्रकृति के कण कण की गति में कुछ विशेषता लक्ष्य करता है, विशेष संदेश पाता है; उसमें अपनी वृत्ति को लीन करके विशेष रूप से उसका वर्णन करता है। कवि का आदर्श है मानव जीवन के सुख-दुख,

उद्देश्य-आदर्श आदि की व्याख्या करना और प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन करना। इस आदर्श की पूर्ति करते समय उसे जो सुख प्राप्त होता है, उसका अनुभव साधारण मनुष्य नहीं करता और न उसका मूल्य ही आँका जा सकता है। इसी प्रकार काव्य का रसास्वादन करने वाले को जो आनंद प्राप्त होता है, वह संसार के समस्त सुख भोगने के आनंद से बढ़कर है।

रचना-शैली के अनुसार काव्य के भेद—काव्य रचना गद्य में भी होती है और पद्य में भी। इस कारण काव्य के दो प्रधान भेद हैं—(१) **गद्यकाव्य**–जैसे उपन्यास, कहानी, निबंध। (२) **पद्यकाव्य**—जैसे रामचरितमानस, साकेत, प्रियप्रवास। जिस रचना में इन दोनों का मेल रहता है उसे 'मिश्र' या चंपू काव्य कहते हैं। हिंदी में इस ढंग की रचनाएँ कम हैं।

प्रयोजन के अनुसार भी काव्य के दो भेद होते हैं—(१) **दृश्य काव्य** जैसे नाटक। ऐसे काव्य का पूर्ण आनंद उस समय प्राप्त होता है जब उसका अभिनय देखा जाय ; केवल पढ़ने से इसका पूरा आनंद नहीं मिलता। (२) **श्रव्य काव्य**—जिस रचना का पूर्ण आनंद सुनने या पढ़ने से ही प्राप्त हो जाय जैसे रामचरितमानस, गोदान उपन्यास, साधारण कहानियाँ।

जीवन की कथा या दशा के वर्णन की दृष्टि से काव्य के दो भेद होते हैं—(१) **प्रबंध काव्य**–जिसमें किसी व्यक्ति या अन्य प्राणी के जीवन की कथा वर्णित हो। इस प्रकार की रचना में सभी छंद एक दूसरे से इस प्रकार संबद्ध रहते हैं कि एक का अर्थ समझने के के लिए आगे-पीछे का प्रसंग जानना पड़ता है। इसलिए ऐसी रचना के फुटकर छंदों के पढ़ने पर उनका पूरा आनंद नहीं मिलता। (२) **मुक्तक काव्य**—जिस काव्य के सब छंद विषय और अर्थ की दृष्टि से स्वतंत्र और पूर्ण हों। ऐसी रचना में एक छंद का अर्थ समझने के

लिए आगे-पीछे के छंद पढ़ने की आवश्यकता नहीं होती और प्रत्येक छंद का पूर्ण आनंद उसे पढ़ते-समझते ही प्राप्त हो जाता है।

प्रबंध काव्य के दो भेद और होते हैं-- (क) महाकाव्य—जिस रचना में सारे जीवन की लंबी कथा कही गयी हो जैसे रामचरितमानस। (ख) खंडकाव्य—जिस रचना में जीवन की सारी कथा न लेकर केवल एक प्रसंग का वर्णन किया गया हो जैसे जयद्रथ-वध, अभिमन्यु-वध, पंचवटी।

रमणीयता की दृष्टि से काव्य के तीन भेद हैं— (१) उत्तम-काव्य—जिस रचना में ध्वनि या व्यंग्यार्थ की प्रधानता हो। (२) मध्यम-काव्य—जहाँ ध्वनि या व्यंग्य साधारण श्रेणी का हो। (३) अवर-(अधम) काव्य---जहाँ व्यंग्य का अभाव हो। ऐसी रचना में केवल अलंकारों की अधिकता रहती है।

'ध्वनि' या 'व्यंग्य' शब्द का प्रयोग, ऊपर के परिच्छेद में, साधारण अर्थ में नहीं किया गया है। यह शब्दों के अर्थ से संबंध रखनेवाली विशेष शक्ति है। शब्दों का मूल्य उनके अर्थों के कारण ही होता है। अर्थों में ही शब्दों की शक्ति छिपी रहती है और उन्हीं के द्वारा मनुष्य पर शब्दों का प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक शब्द का एक सीधा-सादा सामान्य अर्थ रहता है और दूसरा सांकेतिक अर्थ जो प्रसंग समझने पर ज्ञात होता है। 'गधा' शब्द सीधा सादा है और एक पशु का बोध कराता है; परन्तु किसी की मूर्खता का काम देखकर जब कहा जाता है—वह तो बिलकुल गधा है—तब 'गधा' का अर्थ होता है 'मूर्ख'। इस तरह शब्दशक्तियाँ तीन प्रकार की होती हैं—

(१) अभिधा शक्ति—शब्दों का जो साधारण अर्थ, कोश आदि की सहायता से, सबको ज्ञात हो जाता है उसे वाच्यार्थ कहते हैं। यह अर्थ बतानेवाला शब्द वाचक कहलाता है और जिस शक्ति के द्वारा यह अर्थ ज्ञात होता है वह अभिधा कहलाती है। 'लखनऊ का नवाब', 'धोबी का गधा', 'आदमी मोटा है' जैसे वाक्यों में 'नवाब'

'गधा' और 'मोटा' शब्द का सीधा-सादा अर्थ लिया गया है। इसी तरह, प्रसंग के संबंध से, एक शब्द के कई अर्थों में से एक अभिधा शक्ति के द्वारा ही जाना जाता है; जैसे—राम-कृष्ण ब्रजभूषन जानौ। 'राम' शब्द साधारणतः परशुराम, रामचंद्र और बलराम के लिए आता है; परंतु यहाँ कृष्ण के संबंध के कारण इसका अर्थ 'बलराम' ही लिया जायगा।

(२) **लक्षणा शक्ति**—शब्द के सीधे-सादे अर्थ को छोड़कर स्थिति या संबंध के अनुसार किसी प्रचलित 'रूढ़ि' या प्रयोजन के कारण जो विशेष अर्थ समझा जाता है उसे लक्ष्यार्थ कहते हैं। यह अर्थ बतानेवाला शब्द लक्षक कहलाता है और जिस शक्ति के द्वारा यह अर्थ ज्ञात होता है वह लक्षणा कहलाती है। किसी की लापरवाही, मूर्खता या धन देखकर यह कहना—वह तो 'नवाब' हो रहा है, वह बिलकुल 'गधा' है। काफी 'मोटा' आसामी फाँसा है, लक्ष्यार्थ का उदाहरण है। कारण, इन वाक्यों में 'नवाब', 'गधा' और 'मोटा' के सीधे-सादे अर्थ न लेकर प्रसंग से संबंधित विशेष अर्थ 'लापरवाह', मूर्ख और 'धनी'—लिये गये हैं। एक उदाहरण और—

कोऊ कोरिक संग्रहौ, कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा बिपति बिदारन हार॥

यहाँ जदुपति कृष्ण को 'संपत्ति' कहा है। अतएव यह शब्द साधारण धन-दौलत का द्योतक न होकर अपनाने या प्राप्त करने योग्य उत्तम पात्र का द्योतक है।

(३) **व्यंजना शक्ति**—शब्द का वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ छोड़कर जो विलक्षण अर्थ कभी कभी ज्ञात होता है, वह 'व्यंग्यार्थ' कहलाता है। यह अर्थ बतानेवाला शब्द व्यंजक कहलाता है और जिस शक्ति के द्वारा यह अर्थ ज्ञात होता है वह व्यंजना कहलाती है। एक मित्र ने कहा—शरीफों में बैठकर इस तरह कहकहे नहीं लगाये जाते। दूसरे ने

उत्तर दिया—ठीक है, शरीफों में बैठकर इस तरह कहकहे नहीं लगाये जाते। इस उत्तर का व्यंग्यार्थ यह है कि आप लोग शरीफ हैं ही कब। दूसरा उदाहरण—

हंस-बंस दसरथ-जनक राम लखन से भाइ।
जननी तू जननी भई, बिधि-सन कहा बसाइ॥

यहाँ भरत जी कैकेयी के अनुचित कर्म की निंदा करते हुए वंश की श्रेष्ठता, पिता की श्रेष्ठता और भाइयों के व्यवहार की श्रेष्ठता की ओर संकेत करके 'जननी' के कर्म की तुच्छता बता रहे हैं। यह अर्थ व्यंजना शक्ति द्वारा ही निकलता है। व्यंजना शक्ति से व्यंग्यार्थ का बोध होता है।

काव्य के गुण—लेखक अपनी कृति को सुन्दर से सुन्दर रूप में पाठक के सामने रखना चाहता है। यही प्रयत्न कवि का भी रहता है। अपने काव्य को जिन गुणों की सहायता से वह विशेष प्रभावशाली या लोकप्रिय बनाता है, वे तीन हैं—

(१) माधुर्य गुण—जिस गुण की सहायता से कवि अपनी रचना को मधुर बनाता है। इस गुण का संबंध प्रायः शब्दों की बनावट से होता है। इसके लिए वह ट ठ ड ढ ण क्ष आदि को छोड़कर शेष अक्षरों वाले शब्दों का प्रयोग करता है। अनुस्वार भी ऐसी रचना में अधिक प्रयुक्त होते हैं और समास भी छोटे छोटे ही अपनाये जाते हैं। रेफ और द्वित्व शब्दों का त्याग ऐसी रचना में किया जाता है। इस गुण का सम्बन्ध विशेष रूप से शृंगार, करुण और शांत रसों से है, और साधारण संबन्ध हास्य तथा अद्भुत से। माधुर्यगुणपूर्ण रचना पढ़ने में बड़ी मधुर जान पड़ती है। उदाहरण—

सुनि सुन्दर बैन सुधा रस साने सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हें, समुझाइ कछू मुसुकाइ चली॥
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन लाहु अली।
अनुराग-तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंज कली॥

(२) ओज गुण—इस गुण का विशेष सम्बन्ध वीर और रौद्र रसों से तथा साधारण सम्बन्ध बीभत्स और भयानक रसों से होता है। यह गुण भी, माधुर्य की तरह, शब्दों की बनावट ही से सम्बन्ध रखता है। अतएव कविता में इस गुण को लाने के लिए ऐसी भाषा का प्रयोग किया जाता है जिसमें (क) द्वित्व वर्ण (क्क, च्च, ट्ट, त्त, प्प आदि) (ख) संयुक्त वर्ण (क्ख, ग्घ, च्छ, ज्झ, ट्ठ, ड्ढ, त्थ, द्ध, प्फ, ब्भ आदि) (ग) रेफ और अर्द्ध रकार (र्, र्ध, क्र, ख्र, ग्र, आदि) और (४) ट, ठ, ड, ढ, श, आदि अक्षरों से बननेवाले शब्दों की और लंबे लंबे समासों की अधिकता हो। इस प्रकार की भाषा का उच्चारण करते समय शब्दों पर विशेष बल देना पड़ता है और इससे रचना प्रभावशालिनी हो जाती है। उदाहरण—

बज्जिय घोर निसान रान चौहान चहौं दिस।
सकल सूर सामंत समरि बल तंत्र मंत्र तिस।
उट्ठि राज प्रिथिराज बाग मनो लग्ग बीर नट।
कढ़त तेग मन बेग लतग मनो बीजु भट्ट घट।
थकि रहे सूर कौटिक गगन, रँगन मगन भई शोनधर।
हृदि हरषि बीर जग्गे हुलसि हुरेउ रंग नव रत्त बर॥

(३) प्रसाद गुण—प्रथम दो गुणों का सम्बन्ध, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, शब्दों की बनावट से होता है। इसके विपरीत, प्रसाद गुण का संबंध शब्दों के अर्थ से रहता है। अतएव जिस रचना में सीधा-सादा अर्थ रखनेवाले सरल शब्दों का प्रयोग अधिक होता है, वह प्रसादगुण-युक्त समझी जाती है। माधुर्य और ओजपूर्ण रचनाओं का अर्थ समझने के लिए पाठक को कुछ देर रुकना पड़ता है, परन्तु प्रसादगुण युक्त रचना की विशेषता यह है कि पढ़ते-पढ़ते ही उसका अर्थ स्पष्ट हो जाता है। अर्थ से सम्बन्ध रखने के कारण प्रसादगुणयुक्त रचनाएँ सभी रसों की मिलती हैं। उदाहरण—

बढ़ जाता है मान वीर का, रण में बलि होने से।
मूल्यवती होती सोने की भस्म यथा सोने से॥
रानी से भी अधिक हमें अब यह समाधि है प्यारी।
यहाँ निहित है स्वतन्त्रता की, आशा की चिनगारी॥
इससे भी सुन्दर समाधियाँ हम जग में हैं पाते।
उनकी गाथा पर निशीथ में क्षुद्र जंतु ही गाते॥
पर कवियों की अमर गिरा में, इसकी अमिट कहानी।
स्नेह और श्रद्धा से गाती है वीरों की बानी॥

काव्य के अंग—काव्य के तीन प्रधान अंग हैं—(१) रस और भाव (२) भाषा और अलंकार (३) छंद शास्त्र या पिंगल। काव्य की रचना के पूर्व इन तीनों अंगों का ज्ञान आवश्यक होता है। आगे इन्हीं की चर्चा की जायगी।

रस

रामायण का 'रामवन गमन प्रसंग' पढ़ते-पढ़ते आँसू बहने लगते हैं; दुष्यन्त और शकुंतला की कथा प्रेम में मग्न कर देती है; आल्हा सुनकर भुजाएँ फड़कने लगती हैं। कविता पढ़ते पढ़ते हृदय के भावों का इस प्रकार प्रकट हो जाना इस बात का द्योतक है कि पाठक या श्रोता अपने को भूलकर ऐसे आनंद में मग्न है जो साधारण आनंद से बहुत बढ़कर है। इसी असाधारण या अलौकिक आनन्द का नाम रस है। ध्यान देने की बात यह है कि कविता-पाठ या नाटक-दर्शन से 'रस' की उत्पत्ति के लिए जो भाव जागते हैं वे हृदय में सोये रहते हैं, कहीं बाहर से नहीं आते। कविता पाठ से या कोई दृश्य देखकर इन सोते हुए भावों को ठेस लगती है और वे जाग जाते हैं।

कविता के लिए नौ रस माने गये हैं—शृंगार, हास्य, अद्भुत, करुण, रौद्र, बीभत्स, वीर, भयानक, शांत। रस के चार अंग हैं जिनकी सहायता से वह पूर्णता को प्राप्त होता है—

(१) **स्थायी भाव**--जो भाव मनुष्य के हृदय में सदा (स्थायी रूप से) वर्तमान रहते हैं और स्थिति, घटना या दृश्य की ठेस लगने पर जाग्रत होते हैं। प्रत्येक रस का एक स्थायी भाव होता है । इसलिए इनकी संख्या भी नौ है – रति या प्रेम (शृंगार रस), हँसी (हास्य रस), शोक (करुण रस), क्रोध (रौद्र रस , उत्साह (वीर रस), भय (भयानक रस), जुगुप्सा, ग्लानि या घृणा (बीभत्सरस), आश्चर्य (अद्भुत रस), और निर्वेद, शम या शांति (शांत रस) । स्थायी भावों की विशेषता यह है कि ये विरोधी-अविरोधी भावों से न दबते हैं न उनमें छिपते हैं और रस की पूर्णता तक उसके साथ रहते हैं ।

(२) **विभाव**—हृदय में सोते हुए स्थायी भाव जिन कारणों से जाग्रत होते हैं उन्हें 'विभाव' कहते हैं। इनके दो प्रकार होते हैं— (क) **आलंबन विभाव**—वह पात्र या पात्री जिसे देखकर स्थायी-भाव जागे; जैसे शकुंतला को देखकर दुष्यन्त के मन में प्रेम जागा। शृंगाररस का आलंबन 'प्रेम मात्र' होता है, करुणरस का 'मृतव्यक्ति' और रौद्ररस का 'शत्रु' । (ख) **उद्दीपन विभाव**—आलंबन विभाव के कारण मन में जागे हुए स्थायीभाव को बढ़ानेवाली बातें; जैसे फूलों की सुगंध, चाँदनी रात, एकांत स्थान इन बातों ने दुष्यन्त का प्रेम और बढ़ा दिया ।

(३) **अनुभाव**—स्थायी भाव के जागने और 'विभाव' की सहायता से बढ़ जाने पर जो शारीरिक चेष्टाएँ की जायँ और जिनसे मालूम हो जाय कि व्यक्ति के मन में अमुक भाव पैदा हो गया है, उन्हें अनुभाव कहते हैं । दुष्यन्त का शकुंतला की ओर प्रेम से देखने लगना, कटाक्ष करना, हृदय पर हाथ रख लेना आदि चेष्टाएँ अनुभाव हैं । इसी तरह क्रोध में होठ काटना, दाँत किटकिटाना, आँखें निकालना, हँसी में मुख खिल जाना, हो हो करना, शोक में रो पड़ना आदि क्रियाएँ भी अनुभाव कहलाती हैं ।

(४) व्यभिचारी या संचारी भाव—स्थायी भावों के साथ कुछ और भाव भी होते हैं जो सदा बने तो नहीं रहते पर समय पर याद आकर रस के पूर्ण होने में सहायता देते हैं। हृदय में उठते हुए भाव को एक बढ़ावा देना इनका काम है और इसके पश्चात वे विलीन हो जाते हैं। किसी दुष्ट की दुष्टता देखकर आप को क्रोध आ रहा है, उसी समय आपको याद आता है कि कई बार ऐसी ही दुष्टता के काम यह दुष्ट चुका है। उन पुरानी बातों की याद आते ही आप का क्रोध बहुत बढ़ जायगा। अतएव यह 'याद' 'संचारी भाव' होगी जो आप के क्रोध को बढ़ावा देकर लुप्त हो जायगी। इसी प्रकार लज्जा का भाव, आशा, उत्साह आदि 'संचारी भाव' हैं जो प्रेम की भावना को बढ़ावा देकर विलीन हो जाते हैं।

इस प्रकार विभाव, अनुभाव और संचारी भाव—तीन की सहायता से स्थायी भाव का पूर्ण अवस्था पर पहुँच जाना रस कहलाता है। नीचे करुण रस का एक उदाहरण दिया जा रहा है —

मात को मोह न द्रोह बिमात को सोंच न तात के गात दहे को।
प्रान को छोभ न, बन्धु बिछोभ न, राज को लोभ न मोद रहे को।
एते पै नेक न मानत 'श्रीपत' एते में सीय बियोग सहे को।
तारन-भूमि में राम कह्यौ, मोहि सोच बिभीषण भूप कहे को॥

लक्ष्मण के शक्ति लगने पर राम विलाप कर रहे हैं। उनका शोक स्थायी भाव है। लक्ष्मण आलंबन विभाव हैं। युद्ध क्षेत्र, मृत शरीर, लक्ष्मण की वीरता आदि उद्दीपन विभाव हैं। राम का दुखी होना, विलाप करना आदि अनुभाव हैं। विभीषण को राजा बनाने का ध्यान और स्मृति संचारीभाव हैं।

नौ रसों के स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारीभावों की सूची नीचे दी जाती है—

(१) शृंगार रस—रति या प्रेम स्थायी भाव है। नायक-नायिका आलंबन विभाव और वाटिका, चाँदनी, शीतल मंद सुगंधित पवन, वसंत ऋतु, एकांत स्थान आदि उद्दीपन विभाव हैं। प्रेमपूर्वक देखना, कटाक्ष

करना, हृदय पर हाथ रखना, आदि अनुभाव हैं। मोह, स्मृति, गर्व, उत्सुक्कता, हर्ष, लज्जा, निद्रा, आवेग, उन्माद, चपलता आदि संचारीभाव हैं।

(२) हास्य रस—हास स्थायीभाव है। उलटी पुलटी बात कहनेवाला या गड़बड़ वेश वाला व्यक्ति आलम्बन विभाव है, उसकी गड़बड़ बात या मेष, हँसमुख मित्रों का जमघट आदि उद्दीपन विभाव हैं। होहो करना, खिलखिलाना, खीसें निकालना आदि अनुभाव हैं। चपलता, उत्सुक्ता, आलस्य आदि संचारीभाव हैं।

(३) करुण रस—शोक स्थायीभाव है। दुखी, पीड़ित या मृत व्यक्ति आलंबन विभाव और उससे संबंध रखने वाली वस्तुओं को तथा अन्य संबंधियों को देखना उद्दीपन विभाव। भाग्य को कोसना, रोना, विलाप करना, पृथ्वी पर गिरना, सिर पीटना, छाती कूटना—अनुभाव हैं। मोह, व्यधि, ग्लानि, स्मृति श्रम, विषाद, उन्माद, जड़ता, चिंता आदि संचारी भाव हैं।

(४) रौद्ररस—क्रोध स्थायीभाव है। अपराधी, शत्रु या दुष्ट आलंबन विभाव और उसकी पिछली करतूतें उद्दीपन हैं। आँखें लाल होना, त्योरी चढ़ना, दाँत किटकिटाना आदि अनुभाव हैं। मद, उग्रता, झुँझलाहट, स्मृति आदि संचारीभाव हैं।

(५) वीररस—उत्साह स्थायीभाव है। उन्नत शत्रु आलंबन विभाव और रण के बाजे, शत्रुओं की ललकार आदि उद्दीपन हैं। सेना-संचालन, भुजा फड़कना, ललकारना, वार करना आदि अनुभाव हैं। हर्ष, गर्व, धैर्य आदि संचारी भाव हैं।

(६) भयानक रस—भय स्थायीभाव है। भयानक जंतु, बलवान, अपराधी, क्रूरशत्रु आदि आलंबन विभाव और शून्य स्थान तथा उनकी भयानक क्रियाएँ उद्दीपन विभाव हैं। काँपना, चेहरा सफेद हो जाना, रोएँ खड़े होना, घिग्घी बँधना आदि अनुभाव हैं। विषाद, चिंता, पिछली क्रूरता की स्मृति आदि संचारीभाव हैं।

(७) बीभत्स रस—ग्लानि या घृणा स्थायी भाव है। मांस का लोथड़ा, रक्त, हड्डी, कंकाल आदि आलंबन विभाव और इनका सड़ना, कीड़े पड़ना, पशु-पक्षियों का नोच-खसोट कर खाना आदि उद्दीपन हैं। मुँह बिगाड़ना, थूकना, कँपकँपी होना, आँख मूँदना आदि अनुभाव हैं। मोह आवेग, व्याधि, मरण, पुरानी स्मृति आदि संचारीभाव हैं।

(८) अद्भुत रस—विस्मय स्थायीभाव है। अद्भुत वस्तु या कार्य आलंबन विभाव हैं और विचित्रता उद्दीपन विभाव। रोमांच, कंप, हक्का बक्का रह जाना आदि अनुभाव हैं। विचार, भ्रम, हर्ष, मोह, स्मृति आदि संचारीभाव हैं।

(९) शांतरस—निर्वेद या शम स्थायीभाव है। संसार की नश्वरता, ईश्वर की भक्ति और ज्ञान आदि आलंबन विभाव हैं और सत्संग, तीर्थ स्थान, मंदिर आदि उद्दीपन। प्रेम से आँसू बहाना, गद्गद् हो जाना आदि अनुभाव हैं और धैर्य, मति, हर्ष, स्मृति, पुरानी कथाएँ आदि संचारीभाव हैं।

अलंकार

मनुष्य अपना भाव प्रकट करता है 'शब्दों' द्वारा और उसे दूसरे व्यक्ति समझते हैं 'अर्थ द्वारा'। इसलिए कवि या लेखक की दृष्टि में 'शब्द' और 'अर्थ' दोनों का प्रायः समान महत्व रहता है। यद्यपि कुछ लोग 'शब्द' पर और कुछ 'अर्थ' पर अधिक ध्यान देते हैं तथापि आज तक शायद कोई भी कवि या लेखक ऐसा नहीं हुआ जिसने इन दो में से केवल एक का ही सम्मान किया हो और दूसरे का तिरस्कार। वास्तव में 'शब्द' काव्य का 'शरीर' है और अर्थ उसका 'हृदय'।

समाज में दूसरों को प्रभावित करने या दूसरों की दृष्टि में अपना मान-पद बढ़ाने के लिए हम हृदय को विशाल दिखाना चाहते हैं। हमारा प्रयत्न होता है कि दूसरे हमारे विचार को पवित्र, आदर्श को ऊँचा और भाव को स्वार्थरहित समझें। इसी प्रकार शरीर और वेशभूषा को भी

सुन्दर, आकर्षक और सुरुचिपूर्ण बनाना हमारा ध्येय रहता है और इसका उद्देश्य भी उक्त ही है।

काव्य-रचना करते समय कवि का उद्देश्य, आदर्श और प्रयत्न भी ऐसा ही रहता है। हृदय और शरीर को सुन्दर दिखाने के लिए उच्चाशय और सुन्दर वस्त्राभूषणों का सहारा लिया जाता है। इसी प्रकार काव्य को सजाने के लिए 'अलंकारों' का सहारा कवि लेता है। इस शब्द का अर्थ है आभूषण या गहना। सुन्दर सजी हुई अर्थात् अलंकृत भाषा में जो बात चमत्कारपूर्ण ढंग से कवि कहता है वह पाठक के मन को विशेष प्रिय लगती है। जो अलंकार केवल भाषा को सजाने के लिए आते हैं उन्हें 'शब्दालंकार' कहते हैं और जो अर्थ की सुन्दरता बढ़ाते हैं उन्हें 'अर्थालंकार'। जो अलंकार शब्द और अर्थ दोनों की सुन्दरता बढ़ाते हैं वे 'उभयालंकार' (उभय = दोनों) कहलाते हैं।

शब्दालंकार

भाषा को सजाने के लिए जिन अलंकारों का सहारा लिया जाता है, वे शब्दालंकार कहलाते हैं। इस संबंध में ध्यान रखने की बात यह है कि शब्दालंकार के सहारे केवल शब्दों में सजावट या चमत्कार होता है। अतएव रचना में जिस शब्द का प्रयोग कवि ने किया है उसके पर्याय-वाची में वह चमत्कार या सौंदर्य नहीं आ सकता। मुख्य शब्दालंकार ये हैं—

(१) **अनुप्रास**—एक ही अक्षर का बार-बार प्रयोग करना। जैसे—तरनि–तनूजा–तट–तमाल–तरुवर बहु छाये। यहाँ 'त' अक्षर कई बार आया है। इस अलंकार के तीन भेद हैं—

(क) **छेकानुप्रास**—जब एक या अनेक अक्षर केवल दो बार प्रयुक्त हों; जैसे—

राधा के बर बैन सुनि, चीनी चकित सुभाय।
दाख दुखी मिसरी मुरी, सुधा रही सकुचाय॥

यहाँ 'बरबैन', 'चीनी चकित', 'मिसरी मुरी', दाख दुखी',

'सुधा सकुचाय' में ब, च, म, द, ख, स अक्षर केवल दो-दो बार आये हैं।

(ख) वृत्यनुप्रास—एक या अनेक अक्षरों का दो से अधिक बार आना ; जैसे—सत्य—सनेह—सील—सुख—सागर में 'स' अक्षर पाँच बार आया है।

(ग) लाटानुप्रास—जहाँ शब्द या वाक्य दोहराये जायँ, उनका अर्थ एक ही हो, परंतु अन्वय करने पर आशय बदल जाय ; जैसे—

तीरथ-व्रत-साधन कहा, जो निसदिन हरि-गान।
तीरथ-व्रत-साधन कहा, बिन निसदिन हरि-गान॥

यहाँ दोनों पंक्तियों के शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त हैं परंतु अन्वय करने पर आशय भिन्न हो जाता है। पहली पंक्ति—यदि दिन रात ईश्वर का भजन करते हो तो तीर्थ-व्रत आदि के चक्कर में पड़ने की आवश्यकता ही क्या ? दूसरी पंक्ति—यदि दिन-रात में ईश्वर का भजन ही नहीं करते तो तीर्थ-व्रत करना भी व्यर्थ ही है।

(२) यमक—एक शब्द का बार-बार प्रयोग हो परन्तु अर्थ हर बार भिन्न रहे ; जैसे—तीन 'बेर' खातीं ते वे तीन 'बेर' खाती हैं। पहले 'बेर' का अर्थ है बार या समय और दूसरे का बेर के फल।

(३) श्लेष—जब एक ही शब्द का प्रयोग किया जाय परंतु उसके अर्थ एक से अधिक निकलें ; जैसे—मंगन को देखि 'पट देत' बार-बार हैं। यहाँ 'पट देत' के दो अर्थ हैं—(क) वस्त्र दान करना। (ख) दरवाजा बन्द करना। पहला अर्थ दानियों के लिए है कि वे भिखमंगों को वस्त्र दान करते हैं। दूसरा अर्थ कंजूसों के लिए है कि वे भिखमंगों को देखते ही द्वार बन्द कर लेते हैं कि कुछ देना न पड़े।

(४) वक्रोक्ति—जब कहने वाला एक शब्द का प्रयोग एक अर्थ में करे और सुनने वाला उसका दूसरा अर्थ समझे ; जैसे—को तुम ? हरि प्यारी। कहा बानर को पुर काम। हरि शब्द का एक अर्थ है विष्णु और दूसरा है बानर। (इस शब्द के और भी अर्थ हैं)। एक दिन विष्णु ने

दरवाजा खटखटाया । लक्ष्मी ने पूछा—कौन ? विष्णु ने अपना नाम बताया - मैं हूँ हरि । लक्ष्मी जी को हँसी सूझी ; उन्होंने 'हरि' शब्द का दूसरा अर्थ 'बानर' लगाकर पूछा—यहाँ बंदर का क्या काम है ?

वक्रोक्ति के दो भेद होते हैं—(क) श्लेष वक्रोक्ति—जिसमें श्लेष के द्वारा एक शब्द के एक से अधिक अर्थों का सहारा लेकर सुननेवाला कहनेवाले से भिन्न अर्थ निकाले । इसका उदाहरण ऊपर दिया जा चुका है । (ख) काकु वक्रोक्ति—जहाँ कंठ की ध्वनि को बदलने से सुननेवाला कही हुई बात का भिन्न अर्थ निकाल ले ; जैसे--

क्यों ह्वै रह्यो निरास कहि हरि नहिं हरिहैं बिपति ।
राखिय दृढ़ विश्वास, हरि ह्वै नहिं हरिहैं बिपति ॥

एक व्यक्ति कहता है—हरि मेरी विपत्ति नहीं हरेंगे (हरि नहिं हरिहैं विपति) । दूसरा इसी कथन पर जोर देकर उसे प्रश्नवाचक बनाकर अर्थ बदल देता है—अरे कैसी बातें करते हो ; नाम है हरि, और तुम्हारी विपत्ति नहीं हरेंगे (नहिं हरिहैं विपत्ति ?) विश्वास रखो, अवश्य हरेंगे ।

(५) वीप्सा—आश्चर्य, घृणा, प्रेम आदि भावावेश को प्रकट करने के लिए एक शब्द का कई बार प्रयोग करना ; जैसे—(क) घृणा—राम ! राम !! ऐसा न करो । (ख) ऊबना—माफ करो, माफ करो ; मुझे मत छेड़ो । तंग आ गया हूँ मैं तुम्हारे इस प्यार से ।

(६) पुनरुक्तवदाभास—एक से अधिक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग इस ढंग से करना कि उनका अर्थ भिन्न हो—पुनि फिरि राम निकट सो आयी—में 'पुनि' का अर्थ है पुनः और 'फिरि' का अर्थ है लौट कर ।

अर्थालंकार

ये अलंकार शब्दों के अर्थ के कारण होते हैं । अतएव यदि एक शब्द के स्थान पर उसका पर्यायवाची (वही अर्थ रखने वाला शब्द) लिख दिया जाय, तब भी अर्थ का चमत्कार बना रहेगा । मुख्य अर्थालंकार ये हैं ।

(१) उपमा—जहाँ एक वस्तु की समानता दूसरी से दिखायी जाय जैसे–मुख चंद्रमा के समान सुंदर है ।

उपमा अलंकार के चार अंग होते हैं— (क) उपमेय--जिस वस्तु या पात्र का वर्णन किया जाय; जैसे ऊपर के वाक्य में 'मुख' (ख) उपमान—जिस वस्तु या पात्र से उपमेय की तुलना की जाय, जैसे चंद्रमा (ग) साधारण धर्म—उपमेय और उपमान में जो समानता बतायी जाय, जैसे 'सुंदर' । (घ) जिस शब्द के द्वारा उपमेय और उपमान की समानता सूचित हो, जैसे-- 'समान' । इसी तरह सा, इव, तुल्य, लौं, सदृश, सम, ज्यों, जैसे, जिमि,इमि, आदि शब्द भी वाचक होते हैं ।

उपमा के दो भेद होते हैं— (क) पूर्णोपमा—जब उपमा के चारो अंग वर्तमान हों । ऊपर का वाक्य इसका उदाहरण है । (ख) लुप्तोपमा – जब उपमा के चारों अंगों में से एक, दो या तीन का लोप हो । जैसे--मुख चंद्रमा के समान है । यहाँ साधारण धर्म 'सुंदर' का लोप है । सरस बिमल बिधु बदन सुहावन—यहाँ वाचक 'सरिस' का लोप है । उपमेय 'नयन' का लोप नीचे के सोरठे में देखिए—

चंचल हैं ज्यों मीन, अरुनारे पंकज सरिस ।
निरखि न होय अधीन, ऐसो नर नागर कवन ॥

(२) अनन्वय--जहाँ उपमेय और उपमान एक ही हों; जैसे— राम से राम, सिया सी सिया, सिरमौर विरंचि बिचारि सँवारे । यहाँ राम को राम के और सीता को सीता के समान कहा गया है ।

(३) प्रतीप—जहाँ उपमान को उपमेय कहा जाय या उपमेय से उपमान को हीन ठहराया जाय अथवा दोनों की समता ही अनुचित बतायी जाय ।

(क) जैसे—गरब करत कत चाँदनी, हीरक छीर. समान ।
फैलो इती समाजगत, कीरति सिवा खुमान ॥

(ख) राम रावरे बदन की सरबरि करत मयंक ।
ते कवि गन झुठे जगत, लखि मलीन सकलंक ॥

पहले उदाहरण में शिवा की चारों ओर फैली हुई कीर्ति की चर्चा करते हुये कवि चाँदनी का निरादर करता हुआ पूछता है कि तू गर्व किस बात का करती है, शिवा की कीर्ति तुझसे अधिक उज्ज्वल है, अधिक व्यापक है। दूसरे उदाहरण में मलीन और कलंकित चंद्र से राम के मुख की उपमा देना कवि अनुचित ठहराता है क्योंकि राम का मुख सदैव प्रफुल्ल रहता है और सर्वथा निष्कलंक है।

(४) **रूपक**—जहाँ उपमेय और उपमान में कोई भेद न रह जाय अर्थात उपमेय को उपमान का ही रूप कहा जाय; जैसे—मुख-चंद्र।

रूपक के दो भेद होते हैं—(क) **अभेद** रूपक—जहाँ उपमेय और उपमान में कोई भेद न रहे और उनके अंग भी एक से हों; जैसे—

नारि-कुमुदिनी अवध-सर रघुवर-बिरह दिनेस।
अस्त भये विकसित भईं, निरखि राम राकेस॥

अवध, नारियाँ, राम का विरह, और राम (का दर्शन)—इनसे सर (तालाब), कुमुदिनी (रात में खिलनेवाली कुई), दिनेश (सूर्य) और राकेश (चंद्रमा) की अभेदता दिखाई गयी है।

(ख) **तद्रूप रूपक**—जहाँ उपमेय और उपमान को अलग बताकर भी एकसा और एक ही कार्य करनेवाला कहा जाय; जैसे—

रच्यौ विधाता दुहुँन लै, सिगरी सोभा-साज।
तू सुंदरि, सचि दूसरी, यह दूजो सुरराज॥

यहाँ दूसरी शची (इंद्र की पत्नी) और सुरराज (इंद्र) कहने से उपमेय और उपमान को अलग तो किया गया है पर है उपमेय उसी का रूप।

(५) **दीपक**—जहाँ उपमेय और उपमान दोनों का धर्म (विशेषता का कार्य) एक ही बताया जाय; जैसे गज मद सौं नृप तेज सौं सोभा लहत बनाय। यहाँ राजा और हाथी दोनों का धर्म (शोभा पाना) एक ही बताया गया है।

(६) उल्लेख--जहाँ एक व्यक्ति का अनेक प्रकार से वर्णन हो। यहाँ राम के अनेक रूप भिन्न-भिन्न लोगों को दिखायी दे रहे हैं--

जनक जाति अवलोकहि कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे।
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाहि बखानी।
जोगिन परम तत्व मय भासा। संत सुद्ध मन सहज प्रकासा।
हरि भगतन देखउ दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुखदाता।
रहे असुर छल जो नृप-भेषा। तिन प्रभु प्रकट काल-सम देखा।

(७) स्मरण—जहाँ एक वस्तु या प्रसंग को देखने, सुनने या सोचने से पिछली वैसी ही वस्तु या घटना की याद आ जाय; जैसे—उत्तर दिशा से याद उनको उत्तरा की आ गयी।

(८) भ्रांतिमान—समानता के कारण एक वस्तु को निश्चयपूर्वक दूसरी समझ लेना ; जैसे।

बिल बिचारि प्रबिसन लग्यौ ब्याल सुंड मैं ब्याल।
ताहू कारी ऊख भ्रम लियौ उठाइ उताल।

हाथी की सूड़ को भ्रम से साँप ने बिल समझा और साँप को हाथी ने भ्रम से ऊख समझा।

(९) संदेह—जहाँ 'यह है या वह' कहकर संदेह प्रकट किया जाय, जैसे—

सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है,
सारी ही की नारी है कि नारी ही की सारी है।

(१०) अपन्हुति--जहाँ उपमेय को अस्वीकार करके उपमान की प्रतिष्ठा की जाय ; जैसे—बंधु न होय मोर यह काला। यहाँ 'बंधु' (वालि) को स्वीकार न करके उसे 'काल' (उपमान) कहा गया है।

(११) उत्प्रेक्षा—जहाँ उपमेय में उपमान मान ही लिया जाय; जैसे—बाला- कथन-श्रवण से मानो, बादल को करुणा आयी। मनु, मानो, जनु, जानो, इव, आदि इस अलंकार के चिन्ह हैं।

(१२) अतिशयोक्ति—जहाँ उपमेय की ऐसी प्रशंसा की जाय

जो लोक-सीमा से बाहर की हो जैसे—मुँह से फूल झड़ते हैं ; ईद का चाँद हो रहे हो । दो उदाहरण और--

(क) फबि फहर अति उच्च निसाना, तिन महँ अटकत बिबुध बिमाना।

(ख) जो सुख भा सिय मातु मन देखि राम बरबेष ।
सो न सकहिं कहि कल्प सत, सहस सारदा सेष ।

पहले उदाहरण में झंडों की ऊँचाई बहुत ही बढ़ाकर कही गयी है । दूसरे में, सुख की बहुत अधिकता बतायी है । इसी प्रकार जहाँ शेष, शारदा, वेद, गणेश आदि का किसी बात का वर्णन करने में असमर्थ होना कहा जाय वहाँ भी-अतिशयोक्ति अलंकार होता है ।

(१३) दृष्टांत—जहाँ एक बात कह कर दूसरी से उसे सिद्ध किया जाय ; जैसे--

भरतहिं होइ न राजमद बिधि-हरि-हर पद पाइ ।
कबहुँ कि काँजी-सीकरनि छीर-सिंधु बिनसाइ ॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश का पद पाकर भी भरत को गर्व नहीं हो सकता--इस कथन की सिद्धि, दूध का समुद्र काँजी (खटाई) की बूँदों से नहीं बिगड़ सकता--कहकर की गयी है ।

(१५) व्याजस्तुति—जहाँ स्तुति से निंदा और निंदा से स्तुति की जाय ; जैसे (क) स्तुति द्वारा निन्दा—

(क) नाक-कान बिनु भगिनी निहारी । छमा कीन्ह तुम धर्म बिचारी ।

(ख) धन्य कीस जो निज प्रभु काजा । जहँ तहँ नाचहिं परिहरि लाजा ।

(ख) निन्दा द्वारा स्तुति—

(क) स्वर्ग चढ़ाये तैं पतित, गंग कहा कहुँ तोय ।

(ख) जमुना तू अबिबेकनी कौन लियो यह ढंग ।
पापिन सों निज बन्धु को मान करावत भंग ॥

(१६) विभावना—जहाँ कारण न होने पर भी कार्य होने या फल मिलने की चमत्कारपूर्ण कल्पना की जाय ; जैसे—

बिनु पद चलै, सुनै बिनु काना ।

(१७) व्यतिरेक—जहाँ उपमेय और उपमान को समान बताकर, उपमान की हीनता द्वारा उपमेय की श्रेष्ठता सिद्ध की जाय ; जैसे—

जन्म सिंधु पुनि बन्धु बिष, दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि चन्द बापुरो रंक॥

यहाँ उपमान चन्द्रमा की हीनता, खारी समुद्र से जन्मने, विष का भाई होने, दिन में कांतिहीन हो जाने तथा कलंकपूर्ण रहने, की बात कहकर, सीता के मुख की श्रेष्ठता सिद्ध की गयी है।

(१८) अत्युक्ति—किसी के दान, वीरता आदि का बहुत बढ़ा-चढ़ा का वर्णन करना ; जैसे—

(क) जाचक तेरे दान ते भये कल्पतरु भूप।
(ख) इते उच्च सैलन चढ़े तुव डर अरि सकलत्र।
तोरत कंपित करन सों मुकुता समुझि नछत्र॥

(१९) विरोधाभास—जहाँ दो वस्तुओं का विरोध न होने पर भी विरोध बताया ; जैसे—

देश पर जो मरते हैं, अमर होते हैं।

(२०) परिसंख्या—किसी वस्तु, धर्म या गुण को सब स्थानों से हटाकर केवल एक स्थान पर बताना; जैसे—

केसन ही में कुटिलता, संचारिन में संक।
लखौ राम के राज में इक ससि माँहि कलंक॥

आशय यह कि राम के राज्य में कुटिलता, शंका और कलंक ये अवगुण सब स्थानों से हटकर केवल बालों, संचारीभावों और चन्द्रमा में ही रह गये हैं।

(२१) प्रतिवस्तूपमा—जहाँ उपमान और उपमेय वाक्यों का भिन्न भिन्न शब्दों द्वारा एक ही धर्म कहा जाय ; जैसे—

भ्राजत भानु प्रताप सों, राजत धनु सों सूर—यहाँ दोनों वाक्यों का एक ही धर्म 'भ्राजत' और 'राजत' शब्दों द्वारा बताया गया है।

(२२) परिकर—जहाँ साभिप्राय विशेषण का प्रयोग हो; जैसे—

पिनाकपाणि महादेव को कुसुमायुध में करूँ अधीर—यहाँ 'पिनाक पाणि' (कठोर धनुष हाथ में लेनेवाले) और 'कुसुमायुध' (फूलों के तीर वाला) दोनों विशेषण साभिप्राय हैं।

(२३) **परिकरांकुर**—जहाँ विशेष्य साभिप्राय हो ; जैसे—शेष न तुव **गुन** कहि सकै—सहस्रजीभवाला शेष भी गुणों के वर्णन में असमर्थ बताया गया है।

(२४) **पर्यायोक्ति**—जहाँ कोई बात घुमा फिराकर कही जाय, जैसे—

सीता-हरन तात जनि कहेउ पिता सन जाइ।
जो मैं रांम तो कुल सहित कहहि दसानन आइ।।

मैं रावण को मारूँगा—सीधे सादे शब्दों में यह बात न कह कर राम ने घुमाकर कही है।

छंद

रचना के दो रूप हैं—(१) गद्य (२) पद्य। गद्य में व्याकरण के नियमों और वाक्य में शब्दों के निश्चित क्रम का विशेष ध्यान रखा जाता है। परन्तु पद्य में वर्ण, मात्रा, गति और लय पर कवि की प्रधान दृष्टि रहती है। अतएव रचना के समय वर्ण, मात्रा और लय के नियमों का विशेष ध्यान रखना, उसे छंद-बद्ध करना कहलाता है। छंदनियमों के अनुसार लिखी गयी रचना पद्य कहलाती है। छंदबद्ध रचना अर्थात पद्य पढ़ने में सुन्दर और कंठाग्र करने में सरल होती है। यही कारण है कि पद्य का आदर मानव के सभ्य होने के समय से आज तक बराबर होता आया है।

छन्द के दो प्रधान अंग हैं—(१) वर्ण (२) मात्रा। इसलिए छंद मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं—

(१) **वर्णिक छंद या वर्ण वृत्त**—जिन छन्दों की रचना में वर्णों या अक्षरों की संख्या और उन के लघु-गुरु होने का ध्यान रखा जाय जैसे—कैसे मैं रहूँगा हाय, शून्य लंकाधाम में। (१५ वर्ण)

(२) **मात्रिक छंद**—जिस छन्द की रचना में अक्षरों की मात्राओं का ध्यान रखा जाय और प्रत्येक पंक्ति में मात्राएँ समान हों; जैसे—

जो घनीभूत पीड़ा थी (१४ मात्राएँ)
मस्तक में स्मृति सी छायी (१४ मात्राएँ)

गुरु-लघु

वर्णों और उनकी मात्राके लघु-दीर्घ होनेका पता उनके उच्चारण से लगता है। उच्चारण के अनुसार हिन्दी स्वरों के दो भेद किये जाते हैं---(१) ह्रस्व स्वर—जिनके उच्चारण में थोड़ा समय लगे; जैसे अ, इ, उ ऋ। (२) दीर्घ स्वर—जिनके उच्चारण में ह्रस्व स्वर से दूना समय लगे; जैसे आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः।

स्वरों के इसी भेद के अनुसार मात्राओं के भी दो भेद हो जाते हैं—(१) लघु मात्राएँ---ह्रस्व स्वरों (अ इ उ ऋ) की मात्राएँ। (२) दीर्घ या गुरु मात्राएँ---दीर्घ स्वरों (आ ई ऊ ए ऐ ओ औ अं अ:) की मात्राएँ।

व्यंजन की मात्रा उसमें मिले हुए स्वरके अनुसार या उसमें मिले हुए स्वर की मात्राके अनुसार होती है। क कि कु कृ वर्ण लघु होते हैं और का की कू के कै को कौ कं कः दीर्घ या गुरु होते हैं। लघु मात्रा का चिन्ह 'I' है और दीर्घ या गुरु का 'S'। लघु की 'एक' और गुरु की 'दो' मात्राएँ गिनी जाती हैं।

कविता में लघु-गुरु मात्राओं के ये नियम काम में आते हैं---

(१) अनुस्वार की मात्रा गुरु होती है; परन्तु चंद्रबिंदु (ँ) की लघु। रंग में (रं) गुरु समझा जायगा लेकिन रँगना का (रँ) लघु होता है।

(२) संयुक्ताक्षरों के पहले आये हुए व्यंजनों का उच्चारण करते समय यदि लघु वर्ण पर जोर पड़े तो उसे 'गुरु' और जोर न पड़े तो 'लघु' समझना चाहिए। 'धन्य' में 'ध' पर जोर पड़ता है; इसलिए 'ध' की दो मात्राएँ गिनी जायँगी। पर 'कन्हैया' में 'क' पर जोर नहीं पड़ता; अतः 'क' की मात्रा लघु रहेगी। इसी तरह कविता पढ़ते समय किसी लघु वर्ण या मात्रा पर जोर पड़े तो उसे गुरु मान लेना चाहिए और गुरु पर जोर न पड़े तो उसे लघु समझना चाहिए। 'धनुषजज्ञ जेहि कारन

होई—में 'जेहि' का 'जे' हल्के उच्चारण के कारण, गुरु मात्रा के रहते हुए भी, लघु समझा जायगा। इसी प्रकार नीचे के उदाहरण में 'यदि' का 'दि' लघु होते हुए भी दीर्घ समझा जायगा—

दुखित है धनहीन, धनी सुखी—
यह विचार परिष्कृत है यदि ।
मन ! युधिष्ठिर को फिर क्यों हुई
विभवता भव-ताप विधायनी ॥

(३) हलंत के पहले का अक्षर दीर्घ समझा जाता है और हलंत वर्ण की मात्रा नहीं गिनी जाती जैसे 'राजन्' में 'ज' गुरु होगा और 'न्' की मात्रा नहीं रहेगी।

(४) लघु-गुरु का संक्षिप्त रूप 'ल' और 'ग' होता है।

गति या लय

छन्द में मात्राओं या अक्षरों की संख्या का ध्यान रखना पड़ता है। इसके साथ-साथ प्रत्येक छन्द की एक लय या गति भी होती है। जिस छन्द की लय या गति ठीक होती है वह बड़े सुन्दर स्वर से गाकर पढ़ा जा सकता है। अतएव काव्य रचना करते समय इसका ध्यान रखना मात्रा या वर्ण की संख्या से अधिक आवश्यक है। उदाहरण के लिए—धन्य जनम जगतीतल तासू—इस में नियम के अनुसार १६ मात्राएँ हैं। यदि इस पंक्ति के शब्दों का क्रम इस प्रकार कर दिया जाय—तासू जनम जगतीतल धन्य—तब मात्राएँ तो वही १६ रहेंगी, पर छन्द की लय बिगड़ जायगी। कवि जब भावमग्न होकर रचना करता है उस समय वह प्रत्येक पंक्ति की मात्राएँ गिनता नहीं चलता ; ऐसा होता तब तो तुलसी दास का आधा जीवन चौपाइयों की मात्रा गिनते ही बीत जाता। वास्तव में छन्द के बार बार के उच्चारण से उसकी लय का अभ्यास हो जाता है और तब जो पंक्ति मुख से निकलती है उसकी मात्राएँ, वर्ण तथा उनका क्रम ठीक ही होता है।

यति

छन्द के चरण के अन्त में पढ़ने वाले को विश्राम की आवश्यकता होती है। इसलिए छन्द की मात्राओं के अनुसार प्रत्येक चरण पूर्ण होना चाहिए। कभी कभी एक चरण की दो- एक मात्राएँ दूसरे में पहुँच जाती हैं। ऐसे छन्दों में दो चरणों की मात्राओं के जोड़ के हिसाब से तो छन्द ठीक होता है पर पहले के अन्त में पाठक के न रुकने के कारण उस में दोष आ जाता है; जैसे—

दोउ समाज निमिराज रघु। राज नहाने प्रात।

ये दोहे छन्द के दो चरण हैं। पहले में तेरह मात्राओं पर यति या विराम होता है; परन्तु तेरहवीं मात्रा पूरी होती है 'रघु' के 'घु' पर। इससे 'रघुराज' शब्द को तोड़ कर पढ़ना पड़ता है। अतएव यहाँ 'यति भंग' दोष आ गया है।

गण

वर्णिक अक्षरों की रचना में सुविधा के लिए तीन-तीन अक्षरों का एक-एक समूह बना दिया गया है जिसमें लघु-गुरु मात्राओं का क्रम भिन्न होता है। प्रत्येक समूह 'गण' कहलाता है। लघु-गुरु मात्राओं के क्रम को ध्यान में रखकर 'गण' आठ माने गये हैं। इनके नाम हैं—यगण, मगण, तगण, रगण, जगण, भगण, नगण, और सगण। इन आठों गणों की मात्राएँ याद रखने के लिए इन नामों का पहला अक्षर लेकर एक सूत्र बना लिया गया है—

यमाताराजभानसलगा
ISSSISIIIS

इस सूत्र के अन्त में 'ल' से 'लघु' और 'ग' से 'गुरु' मात्राएँ समझनी चाहिएँ। शेष आठ वर्ण आठ गणों के नामों के पहले अक्षर हैं। इस सूत्र की सहायता से प्रत्येक 'गण' की मात्रा निकालने का नियम बहुत सरल है। जिस गण के अक्षरों का क्रम जानना हो उसके नाम का एक और उस के आगे के दो अक्षर लेकर तीन अक्षरों का एक शब्द बना लें। इस शब्द में मात्राओं का जो क्रम होगा वही उस गण की मात्राओं का समझना

चाहिए। उदाहरण के लिए 'यगण' की मात्राएँ जानने के लिए 'यमाता' (ISS), तगण की मात्राएँ जानने के लिए 'ताराज' (SSI) और अन्त में 'सगण' के लिए 'सलगा' (IIS) शब्द बनते हैं।

शुभाशुभवर्ण एवं दग्धाक्षर

हिन्दी के स्वरों और व्यंजनों में कुछ 'शुभ' माने जाते हैं और कुछ 'अशुभ'। सब स्वर शुभ माने जाते हैं और व्यंजनों में क ख ग घ च छ ज त द ध न य श स—ये 'शुभ' माने जाते हैं और शेष 'अशुभ'। अशुभ अक्षरों में भी झ भ र ष ह बहुत 'अशुभ' समझे जाते हैं। इसलिए इन्हें 'दग्धाक्षर' कहते हैं। छन्द के पहले शब्द का इनसे आरंभ होना एक दोष समझा जाता है। परन्तु यदि अशुभ अक्षरों से किसी देवता का नाम हो अथवा वह अक्षर दीर्घ होकर आये तो दोष मिट जाता है।

संख्यासूचक शब्द

कविता में एक, दो, तीन, चार, आदि संख्याएँ न लिखकर प्रायः संख्यासूचक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। बीस तक की संख्याओं के लिए ये शब्द आते हैं—

शून्य—आकाश। एक—पृथ्वी, चन्द्रमा, आत्मा। दो—आँख, पक्ष, हस्त, सर्पजिह्व, नदीकूल। तीन—गुण, राम, काल, अग्नि, शिव-नेत्र, ताप। चार—वेद, वर्ण, आश्रम, ब्रह्मा के मुख, युग, धाम, पदार्थ। पाँच—कामशर, इन्द्रिय, शिवमुख, पांडव, गति, प्राण। छः—ऋतु, राग, रस, वेदांग, शस्त्र, ईति, कार्तिकेयमुख, भ्रमर के पद। सात—मुनि, स्वर, पर्वत, समुद्र, लोक, सूर्य के घोड़े, वार, पुरी, गोत्र, ताल। आठ—सिद्धि, वसु, प्रहर, नाग, दिग्गज, योग। नौ—भूखंड, अंक, निधि, ग्रह, भक्ति, नाड़ी। दस—दिशाएँ, अवतार। ग्यारह—शिव। बारह—सूर्य। तेरह—नदी, भागवत, किरण। चौदह—भुवन, रत्न, मनु, विद्या। पंद्रह—तिथि। सोलह—शृंगार, संस्कार, कला। सत्रह—(कोई शब्द नहीं हैं)। अठारह—पुराण। उन्नीस—(कोई शब्द नहीं है) बीस—नख।

ऊपर विभिन्न संख्याओं के लिए जो शब्द लिखे गये हैं, उनके स्थान पर पर्यायवाची शब्दों से भी काम निकल सकता है ; जैसे चन्द्रमा के लिए शशि, इन्दु , मयंक आदि ।

कविता में अंकों की गति दाहिनी ओर से बाईं ओर को होती है। १९४९ लिखने के लिए निधि (९) वेद (४) ग्रह (९) चन्द्र (१) लिखेंगे ।

तुक

छन्द की पंक्तियों के अंतिम शब्दों में समान स्वर होना 'तुक' कहलाता है । तुक वाले छन्दों को 'तुकांत' कहते हैं । जिन छन्दों में तुक न हो वे 'अतुकांत' कहलाते हैं ।

मुख्य वर्णिक छंद

यहाँ प्रत्येक छंद का एक चरण दिया गया है । शेष तीन चरण भी इसी तरह होंगे ।

भुजंग—य य य और अंत में ।ऽ—ग्यारह वर्ण ।

महामोद-भागीरथी-सी भरी ।

उपेंद्रवज्रा—ज त ज और अंत में ऽऽ—ग्यारह वर्ण ।

तिन्हें न रामानुज बंधु जानौ ।

इंद्रवज्रा—त त ज और अंत में ऽऽ—ग्यारह वर्ण ।

भागीरथी रूप अनूप कारी ।

द्रुतविलंबित—न भ भ और र—बारह वर्ण ।

दिवस का अवसान समीप था ।

वंशस्थ—ज त ज और र—बारह वर्ण ।

मदीय प्यारी अयि कुंज-कोकिला ।

भुजंगप्रयात—चार यगण— बारह वर्ण ।

पियै एक हाला गुहै एक माला ।

वसंततिलका—त भ ज ज और ऽऽ—चौदह वर्ण ।

योगीश ईश तुम हौ यह योगमाया।

मालिनी—न न म य और य—पंद्रह अक्षर ।

जब विरह बिधाता ने सृजा विश्व में था ।

मंदाक्रांता—म भ न त त और SS—सत्रह वर्ण ।

जो दो प्यारे हृदय मिल के एक ही हो गए हैं ।

शिखरिणी—य म न स भ और ।S—सत्रह वर्ण ।

अनूठी आभा से सरस सुषमा से सुरस से ।

शार्दूलविक्रीड़ित—म स ज स त त और S—उन्नीस वर्ण ।

काले कुत्सित कीट का कुसुम में कोई नहीं काम था ।

मदिरा सवैया—सात 'भगण' और अंत में एक 'गुरु'—बाईस वर्ण ।

तोरि सरासन संकर को सुभ सीय स्वयंबर मांझ बरी ।

मत्तगयंद—सात 'भगण' अंत में दो 'गुरु'—तेईस वर्ण ।

जान गए सब लोग इसे अब है तुममें कितनी निठुराई ।

सुन्दरी—आठ सगण और अंत में एक 'गुरु'—पच्चीस वर्ण ।

सुख शांति रहे सब ओर सदा,

अविवेक तथा अघ पास न आवें ।

घनाक्षरी या मनहरण कवित्त—इकत्तीस वर्ण ; अंतिम वर्ण गुरु ; १६ वें वर्ण पर यति—

सच्चे हो पुजारी तुम, प्यारे प्रेम-मंदिर के,

उचित नहीं है तुम्हें, दुःख से कराहना ।

रूप घनाक्षरी—बत्तीस वर्ण, १६-१६ पर यति, अंत में एक लघु—

तुलसी सराहैं ताको भाग सानुराग सुर,

बरषैं सुमन जय जय कहैं टेरि-टेरि ।

प्रमुख मात्रिक छन्द

आँसू—१४ मात्रा । जो घनीभूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृतिसी छाई

चौपई—१५ मात्रा, अंत में गुरु-लघु ।

उपवन में अति भरी उमंग, कलिया खिलती हैं बहुरंग ।

चौपाई—१६ मात्रा, अंत में ऽ। न हो।

हाथ लिए बल्कल सुकुमारी, ठाढ़ भई लाज उर भारी।

मौलिक—१६ मात्रा।

जगत के दो दिन के ओ अतिथि, प्रेम करना है पापाचार

ग्रंथि—१९ मात्रा। आजकल के छोकरे सुनते नहीं।

अरिल्ल—२१ मात्रा। स्याम कठोर न होहु हमारी बार को।

बिहारी—२२ मात्रा। तो मेरी चिता रक्त की धारा से बुझाना।

लावनी—२२ मात्रा, अंत में 'गुरु'।

सुख-लाली रखलो ऐ माई के लालों।

रोला—२४ मात्राएँ—११ वीं पर यति।

शांत नदी का स्रोत बिछा था अति सुखकारी।

दिग्पाल—२४ मात्रा, १२वीं पर यति।

प्रह्लाद जानता था तेरा सही ठिकाना।

गीतिका—२६ मात्रा, १४वीं पर यति. अन्त में लघु गुरु।

होइ जाको भाव तैसो, तुमहिं ते फल पावहीं।

विष्णुपद—२६ मात्रा, १६वीं पर यति, अन्त में गुरु।

मेरे कुँवर कान्ह बिन सब कछु वैसेहि धरयौ रहै।

हरिगीतिका—२८ मात्रा, १६वीं पर यति, अंत में गुरु-लघु-गुरु

रोती फिरंगी कौरवों की नारियाँ कुछ काल में।

चवपैया—३० मात्रा, १०वीं और १८वीं पर यति, अन्त में गुरु।

माता पुनि बोली, सो मति डोली, तजहु तात यह रूपा।

वीर—३१ मात्रा, १६वीं पर यति, अन्त में गुरु-लघु।

मुझको भी उस पार लगाना, जगती-नौका-खेवनहार;

त्रिभंगी—३२ मात्रा; १०वीं, १८वीं और २६वीं पर यति, आदि में जगण न हो, अन्त में गुरु रहे।

पिय जियहिं रिझावै दुखनि भजावै विविध बजावै गुण गीता।

बरवै—१९ मात्रा, १२वीं पर यति, अन्त में लघु ।

सीय-मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाय ।

दोहा—२४ मात्रा, १३वीं पर यति, आदि में जगण नहीं रहना चाहिए ; अन्त में लघु होता है ।

बतरस-लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ ।

सोरठा—२४ मात्रा, ११वीं पर यति, 'दोहे' का उल्टा ।

मुरली धरी लुकाइ, बतरस-लालच लाल की ।

(क) उल्लाला—२९ मात्रा, १३वीं पर यति ।

भारतेंदु हरिचंद्र की उज्जवल कीर्ति सदा रहे ।

(ख) उल्लाला—२८ मात्रा, १५वीं पर यति ।

वह जाति ध्वंस हो जायगी जो दिन दिन है छीजती ।

छप्पय—६ पंक्तियाँ होती हैं ; प्रथम चार चरणों में रोला और अन्तिम दो में उल्लाला (ख) रहता है ।

कुंडलिया—६ पंक्तियाँ होती हैं । पहले दो चरण दोहे के और अन्तिम चार रोला छंद के रहते हैं । दोहे की दूसरी पंक्ति का अन्तिम चरण, रोला की पहली पंक्ति के आरंभ में रखते हैं । पाँचवें चरण के आरंभ में कवि का नाम रहता है ।

काव्य-रचना

विद्यार्थी जीवन में कवियों और लेखकों की सुन्दर रचनाओं से जब हम प्रभावित होते हैं, स्वभावतः यह इच्छा मन में जन्मती है कि उन्हीं की तरह सुन्दर कविता हम भी किया करें । छोटे-मोटे कवि-सम्मेलन में जाकर और अपने समवयस्क मित्रों या बालकों को कविता--पाठ करते देख कर यह इच्छा और भी तीव्र हो जाती है । हममें से कुछ ऐसे हैं जो इस इच्छा को कार्य-रूप देने का प्रयत्न भी करते हैं । किसी एकांत कोने में, मकान की सबसे ऊपर कोठरी, में बाग-बगीचे में या शांत नदी-तट पर जाकर धीरे-धीरे गुनगुनाते हुए, पेंसिल या फाउटेनपेन से दो-चार पंक्तियाँ वे लिखते और बार बार इन्हें पढ़ कर स्वयं ही आनन्द-सागर में गोते खाने लगते हैं । यदि कविता पूर्ण हो गयी तो घनिष्टतम मित्रों को दिखाने और उनसे प्रशंसा पाने की चाह मन में

पैदा होती है। पश्चात्, अपनी रचना वे छपने भेजते हैं। दो-तीन महीने तक जब उनकी कविता पत्र में छपती नहीं तब धीरे-धीरे निराश हो जाते हैं और एक दिन कविता करने की इच्छा का अंत हो जाता है।

प्रश्न यह है कि कविता करने की इच्छा रखने वाले ये विद्यार्थी अपने प्रयत्न में सफल क्यों नहीं हुए! इनकी रचनाएँ ऐसी सुन्दर क्यों न हो सकीं कि पत्र-संपादक उन्हें पसंद करते, अपने पत्रों में छापते? बड़े-बूढ़े इसका यह उत्तर देंगे—भाई, कवि बनते नहीं, पैदा होते हैं। उनका आशय यह है कि कोरा अभ्यास करने से कोई व्यक्ति कवि नहीं हो सकता। कविता वही कर सकता है जिसे ईश्वर ने विशेष गुण प्रदान किये हैं, जिसमें दैवी प्रतिभा है।

कहने-सुनने में यह बात ठीक है, भली मालूम होती है। परंतु हमारे विद्यार्थियों को इससे निराश होने की आवश्यकता नहीं है और न वे यह जानने के लिए हाथ पर हाथ धरे बैठे ही रहें कि हममें ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा है या नहीं। कविता करना सरस्वती की सबसे बड़ी साधना है, तपस्या है। साधारण इच्छा तो थोड़े प्रयत्न और अभ्यास से पूरी हो जाती है। काव्य-रचना में कुशल होने के लिए बहुत ही सच्ची लगन, बहुत ही सच्चा अभ्यास और अध्यवसाय चाहिए। सच्ची लगन से मतलब यह है कि मार्ग में आने वाली बाधाओं की चिंता न करके हम बराबर आगे बढ़ते रहें। ईर्ष्यालु प्रकृति के मित्र हमारी काव्य-रचना-कामना की सूचना पाकर हँसी उड़ायेंगे, फब्तियाँ कसेंगे, निरुत्साहित करेंगे; परन्तु हमें उनकी परवाह नहीं करनी है। उनके विरोध की परवाह न करके अगर हम आगे बढ़ सकें तो निश्चय ही हमारी लगन सच्ची समझी जायगी।

सच्चे अभ्यास से आशय यह है कि शांत चित्त से रचना की जाय, बार बार उसे पढ़ कर भाव और भाषा में संशोधन और संस्कार किया जाय। अध्यवसाय का तात्पर्य है साहित्य के सुन्दर ग्रंथों का नियमित रूप से इस तरह अध्ययन करना जैसे सच्चे पुजारी नियम के साथ धर्म-ग्रंथों का पठन-पाठन और मनन किया करते हैं। साहित्य-शास्त्र और कवि-कर्म के संबंध में जो पुस्तकें लिखी गयी हैं उन्हें समय-समय पर पढ़ना और उनमें बतायी गयी बातों को ध्यानपूर्वक अपनाना

कवि बनने की इच्छा रखने वाले के लिए आवश्यक है। इस समय वे यह भी ध्यान रखें कि संसार के अधिकांश बड़े कवि दो-चार महीनों के प्रयत्न से ही प्रसिद्धि नहीं पा सके, दस-दस और बीस-बीस साल तक ईमानदारी और लगन के साथ सरस्वती की साधना में लगे रहने पर ही उन्हें अभीष्ट सफलता प्राप्त हुई। अतः सबसे पहले आपके मन में कवि बनने की इच्छा जब पैदा हो तो एकांत में बैठकर, हृदय पर हाथ रखकर अपनी आत्मा से पूछिए—दस-पाँच वर्ष तक लगातार तपस्या करने को आप तैयार हैं? आपकी शारीरिक, मानसिक और पारिवारिक स्थिति इस योग्य है कि आप निश्चिंत रहकर सरस्वती-साधना में लगे रह सकें? आप में इतनी दृढ़ता है कि दो चार महीने तक असफल होने पर भी आप निराश न हों? यदि आत्मा इन प्रश्नों का उत्तर स्वीकारात्मक देती है, तब अपने को भाग्यशाली समझिए और विश्वास कर लीजिए कि सरस्वती का सपूत कहलाने की प्रतिभा या दैवी शक्ति आपमें उसी तरह है जैसे छोटे बीज में वट का विशाल वृक्ष पैदा कर देने की। आवश्यकता केवल उचित ढंग से कार्य आरंभ कर देने की है। काव्य-रचना के पूर्व आपको नीचे लिखी बातें ध्यान में रखनी चाहिएँ—

१. कविता करने का विचार जिस दिन मन में पैदा हो उसी दिन दो कापियाँ बना लीजिए। एक आपकी डायरी का काम देगी और दूसरी में प्रतिष्ठित कवियों की चुनी हुई वे पंक्तियाँ लिखते चलिए जो आपको सुन्दर लगती हैं और बहुत पसन्द हैं। डायरी में आप अपने विचार लिखते चलें। डायरी प्रतिदिन भरना जरूरी नहीं है; पर यह बहुत आवश्यक है कि आप उसे अपने पास रखें हर समय।

२. छंद और अलंकार की साधारण शिक्षा लेने के पश्चात् आप अपनी रुचि के सम्बन्ध में इतना मालूम कीजिए कि किस ढंग की कविता आपको पसन्द है। आरंभ में आप ऐसे छन्द चुनें जिनमें मधुर लय हो। इन छन्दों में लिखी हुई कविता आप बार-बार पढ़िए। हर समय

गुनगुनाते रहने से उस छन्द की लय से आपका ठीक-ठीक परिचय हो जायगा। कान उसके अभ्यासी हो जायँगे। अपने चुने हुए छन्द के नियम अब आप ध्यान से समझ लें। मान लीजिए, आपने 'द्रुतविलम्बित' छन्द चुना है। यह संस्कृत का छन्द है। इसका उदाहरण—

मन रमा रमणी रमणीयता।

। । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ

इस पंक्ति में अक्षरों का क्रम समझ लीजिए और किसी भी सीधी-सादी बात को फ़ुरसत के समय इसी छंद में ढालने का प्रयत्न कीजिए। छत पर आप बैठे हैं, बादल आकाश में उड़ रहे हैं, ठंडी-ठंडी हवा चल रही है, कभी-कभी बिजली चमक जाती है और पानी बरसने ही वाला है। बस, कागज-पेंसिल हाथ में लीजिए और लिखिए--

उड़ रहे नभ में जलमेघ हैं। चल रही यह शीतल वायु भी॥
चमकती बिजली गगनांक में। बरसता जल है अब देखना॥

इसी तरह किसी भी विषय पर दो-चार वाक्य गद्य में लिख कर छंद बनाने का प्रयत्न कीजिए।

३. लगभग पच्चीस साधारण विषयों पर चार-चार पंक्तियाँ बनाने के पश्चात्, पच्चीस सूक्तियों का संकलन कीजिए और उनका सारांश गद्य में लिख लीजिए। अथवा दूसरे कवियों की कविताओं का भावार्थ दो-चार वाक्यों में लिख लीजिए। अब इसे अपने चुने हुए छंद में ढालिए। डा० रामकुमार वर्मा की कविता है—

क्या शरीर है? शुष्क धूल का थोड़ा सा छविजाल।
इस छवि में ही छिपा हुआ है, वह भीषण कंकाल॥

भावार्थ—अपने जिस शरीर को मनुष्य सुंदर समझता है जिस पर वह गर्व करता है, वह धूल से बना है और धूल ही में एक दिन मिल जायगा। कविता के लिए वह सुन्दर विषय है। आप कापी पर लिख सकते हैं—

अति मनोरम है रमणीयता, न पड़ते पग भूमि कठोर पै।
समझ ले मन सत्य विधान तू, यह कभी रज में मिल जायगा॥

४. लगभग पच्चीस कविताओं का सारांश लेकर छंद बनाने के पश्चात् अपनी रचनाओं का स्वयं संशोधन कीजिए। कहीं आपको शब्द खटकेंगे, कहीं आप भाव बदलना चाहेंगे, कहीं भाषा कर्ण-कटु जान पड़ेगी। इन सब दोषों को सुधार लीजिए। अब चुनी हुई दो-चार रचनाएँ लेकर अपने अध्यापक या अन्य शुभचिंतक को दिखलाइए। जो संशोधन वे करें उन्हें ध्यान से समझिए और आगे रचना करते समय उनसे लाभ उठाइए। ध्यान रहे कि किसी कुशल शिक्षक या शुभचिंतक से ठीक कराए बिना आप कोई रचना किसी को न दिखाएँ, घनिष्ट मित्रों से भी इसकी चर्चा न करें। शुभचिंतक से परामर्श लेने के बाद छोटी-छोटी कहानियाँ पद्य-बद्ध कीजिए। बच्चों के लिए सरल भाषा में कविता करना भी इस समय उपयोगी होगा।

५. अब आप इस योग्य हो गये हैं कि पत्रों में प्रकाशित होने योग्य कविताएँ लिख सकें। इस समय आप चुने हुए सुंदर काव्यों का अध्ययन आरम्भ करें। उनके जो स्थल प्रिय लगें, उनकी विशेषताएँ गद्य में आप लिखें, जो पंक्तियाँ आपको प्रिय हों नोट करके उन्हें कंठाग्र करें। इसमें आपको नियमित रूप से एक वर्ष का समय देना चाहिए। स्मरण रहे, आपका यह अध्ययन भावी काव्य-कुशलता रूपी प्रासाद की नींव होगी। नींव जितनी गहरी होगी, प्रासाद उतना ही स्थायी होगा। इसलिए अध्ययन ठोस रहना ही उपयोगी है। अब आप साधारण कथात्मक विषयों पर रचना कीजिए, किसी योग्य व्यक्ति से संशोधन कराकर बालोपयोगी पत्र में भेजिए। रचना प्रकाशित होगी और आपको काम आगे बढ़ाने का प्रोत्साहन मिलेगा।

———

हिंदी-जगत में अभूतपूर्व प्रकाशन

लखनऊ विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के
तत्वावधान में संकलित और संपादित

व्रजभाषा सूर-कोश

निर्देशक–निरीक्षक

व्रजभाषा-साहित्य के मर्मज्ञ और
'अष्टछाप : एक अध्ययन' के प्रतिष्ठित लेखक
डा० दीनदयालु गुप्त, एम. ए., एल-एल. बी., डी. लिट्.
प्रोफेसर और अध्यक्ष हिंदी-विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय

संपादक

हिंदी के उदीयमान आलोचक और
'हिंदी-सेवी-संसार' के ख्यातिप्राप्त प्रणेता
श्री प्रेमनारायण टंडन, एम. ए. सा. रत्न,
रिसर्च और मोदी स्कालर, लखनऊ-विश्वविद्यालय

विशेष विवरण के लिए लिखिए

विद्यामंदिर, रानीकटरा, लखनऊ